Sem. 5, MJ-9

# हिन्दी में शास्त्रीय समीक्षा का विकास

काव्यशास्त्रियों ने दो प्रकार के साहित्य — सर्जनात्मक एवं आलोचनात्मक — की बात कहकर आलोचना-शास्त्र को साहित्य का नियंता और मूल्यांकनकर्ता माना। हिन्दी में आलोचना-शास्त्र का समुचित विकास नहीं हो पाया क्योंकि उसे संस्कृत काव्य-शास्त्र के रूप में व्यापक और प्रभावी परम्परा प्राप्त हुई। इसलिए रीतिकालीन आचार्य कवियों द्वारा जो इस दिशा में प्रयास दिखते हैं, वे केवल संस्कृत काव्य-शास्त्र का पिष्टपेषण मात्र हैं। आधुनिक काल में आकर कुछ समीक्षक आचार्यों ने प्राचीन काव्य-शास्त्र और पाश्चात्य काव्य-शास्त्र का समन्वय करते हुए अपेक्षाकृत नवीन युगानुरूप सिद्धान्तों का प्रणयन किया। आ० श्यामसुन्दरदास का 'साहित्यालोचन', शुक्लजी के 'चिन्तामणि' के निबंध, गुलाबराय का 'सिद्धान्त और अध्ययन', 'काव्य के रूप', सुधांशुजी का 'काव्य में अभिव्यंजनावाद', विश्वनाथप्र० मिश्र का 'वाङ्मय विमर्श', आनन्दप्रकाश दीक्षित का 'रस-स्वरूप : सिद्धान्त और विश्लेषण' जैसी कृतियों ने साहित्यालोचन के शास्त्र का मार्ग प्रशस्त किया।

हिन्दी में साहित्य की समीक्षा के लिए अनेक वादों - सिद्धान्तों का आश्रय लिया ~~गया~~ जाता रहा है। इसी आधार पर कई आलोचना-पद्धतियों का विकास हुआ, इनमें सर्वाधिक लोकप्रिय व प्रचलित समीक्षा-पद्धति 'शास्त्रीय समीक्षा' ही है। इस आलोचना के अन्तर्गत आलोच्य कृति की विषयवस्तु, और शैली को काव्यशास्त्रीय आलोचना के सिद्धान्तों तथा मानकों पर परखा जाता है। इस प्रकार की आलोचना में रचना की रस, भाव, अलंकार, भाषा, शैली आदि साहित्यिक विशेषताओं की शास्त्रीय दृष्टि से व्याख्या की जाती है। पाश्चिमी शास्त्रीय आलोचना की परम्परा ने हिन्दी की इस समीक्षा-पद्धति को समृद्ध बनाने का काम किया। इन दोनों परम्पराओं में अद्भुत साम्य भी है, जिसके समन्वय ने हिन्दी की शास्त्रीय समीक्षा को व्यापक बनाने का सुअवसर दिया।

हिन्दी की शास्त्रीय समीक्षा के प्रथम दर्शन भारतेन्दु-युग में होते हैं, जहाँ प्रेमघन एवं बालकृष्ण भट्ट ने

ने आलोच्य-कृतियों — 'बंग विजेता' तथा 'संयोगिता स्वयंवर' के गुण-दोषों का कथन करते हुए मानवीय व शास्त्रीय मूल्यांकन किया है। हिन्दी आलोचना का द्विवेदी-युग अपेक्षाकृत अधिक सशक्त और मौलिक था। इस समय हिन्दी-समीक्षा शास्त्रीय सिद्धांतों का आश्रय लेकर साहित्य एवं साहित्यकार के गुणों को आलोकित करने लगी थी। द्विवेदीजी ने महाकवि कालिदास की रचनाओं की गुण-दोषमूलक विस्तृत आलोचना की। इसी युग में मिश्रबंधुओं ने 'मिश्रबंधु-विनोद' एवं 'हिन्दी नवरत्न' पुस्तकों के द्वारा आलोचना के कार्य को विशेष महत्त्व दिया। देव आदि कवियों का मूल्यांकन करते हुए संस्कृत साहित्यशास्त्रीय रसवादी दृष्टि को ही उन्होंने आधार बनाया। 'साहित्यालोचन' के प्रस्तोता बाबू श्यामसुन्दर दास ने भारतीय एवं पाश्चात्य सिद्धांतों का समन्वय किया। भारतेन्दु का मूल्यांकन करते उन्होंने कहा, "कल्पना की शुद्धि और मनोवेगों का परिष्कार करना कविता के उपयोगी कार्य हैं।"

हिन्दी आलोचना के शिखर पुरुष आ० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने समीक्षा-ग्रंथों में प्राचीन एवं नवीन दृष्टिकोण का समन्वय प्रस्तुत किया। वे तुलसी जायसी या सूर की समीक्षा करते हुए भारतीय रस-सिद्धान्त का आश्रय लिया और तुलसी को सार्वकालिक श्रेष्ठ कवि कहा — "जगत के वास्तविक दृश्यों और जीवन की वास्तविक दशाओं में जो हृदय समय-समय पर रमता रहता है, वही सच्चा कवि-हृदय है। इसी तरह आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी अपनी समीक्षा-पद्धति के रूप में शास्त्रीय दृष्टिकोण को अपनाया है, पर वहाँ रूढ़िवादिता का स्थान नहीं है। उनकी समीक्षा-कृतियों का आधार वस्तुतः गवेषणात्मक है। 'सूर-साहित्य', 'कबीर', 'नाथ सम्प्रदाय' जैसी कृतियों में द्विवेदी का शास्त्रीय समीक्षक रूप खुलकर सामने आया है। वैचारिक वाद-विवाद से परे उन्होंने स्वस्थ और गम्भीर साहित्य-चिन्तन की परम्परा का आरम्भ किया।

स्वातंत्र्योत्तर युग में शास्त्रीय समीक्षा का एक नवीन रूप दिखाई देता है, जहाँ हर क्षेत्र में समीक्षकों ने समन्वय भावना पर जोर दिया है। यहाँ

पाश्चिमी चिन्तन का एक रूप स्थिर होता जान पड़ता है। डॉ० नगेन्द्र की रचना 'रस-सिद्धान्त' और 'भारतीय काव्यशास्त्र' पं० नन्ददुलारे वाजपेयी का 'आधुनिक साहित्य' जैसे प्रयास महत्त्वपूर्ण हैं। इस समय अनेक इतिहास-ग्रंथों के द्वारा भी शास्त्रीय समीक्षा का रूप सामने आया, जिनमें लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय कृत 'आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका', डॉ० केसरी नारायण शुक्ल कृत 'आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत', डॉ० भोलानाथ कृत 'हिन्दी साहित्य', डॉ० रामचन्द्र तिवारी कृत 'हिन्दी का गद्य-साहित्य' आदि प्रमुख हैं।

आज शास्त्रीय समीक्षा न केवल काव्य-ग्रंथों की व्यावहारिक समीक्षा में प्रगतिशील है, अपितु पाश्चिमी शास्त्र के साथ समन्वय करते हुए इसने नाटक, रंगमंच, कहानी आदि रचना-विधाओं को भी अपनी परिधि में समेट लिया है। हाँ, हिन्दी की शास्त्रीय समीक्षा अपनी उस कमजोरी को भी दूर करने में समर्थ रही है, जिसके कारण उस पर हार्दिक होने की अपेक्षा जटिल होने का आरोप लगाया जाता है। वस्तुतः शास्त्रीयता व्यावहारिकता से समन्वित होकर रचनाशीलता को एक नया वेग प्रदान करती है और हिन्दी की शास्त्रीय समीक्षा इसी दिशा में अग्रसर है।